The Opinion, Vol. 5, No. 10, July-December, 2016 **ISSN : 2277-9124**

मानवाधिकार एवं महिलाएँ

डॉ0 प्रमिला वर्मा *

सभी मानव समान अस्तित्व और अधिकार के साथ स्वतंत्र रूप से जन्मे हैं। वे अंतःकरण और बुद्धि से युक्त है अतः उन्हें भाई चारे की भावना के विकास की दिशा में प्रयत्न करने चाहिए। इन्हीं शब्दों के साथ विश्वव्यापी मानवाधिकार की उद्घोषणा हुई, जिसमें मानव की अवधारणा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई। यद्यपि यह अवधारणा पश्चिमी राजनीतिक परम्पराओं से विकसित हुई तथापि यह कई अन्य परम्पराओं और विश्वासों से मिलती–जुलती है। इस प्रभावक पृष्ठभूमि और तदनंतर संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों से संबंधित उद्घोषणाओं ने विश्वव्यापी प्रभाव डाला और सभी प्रकार की सरकारों को मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए अपने सिद्धांतों और संप्रत्ययों को लागू करने के लिए या उन पर अमल करने के लिए विवश कर दिया।

मानवाअधिकारों की अवधारणा का विकास उन अधिकारों के संदर्भ में हुआ है, जो किसी समाज अथवा समुदाय में सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में आवश्यक होते हैं। मानव अधिकारों का विश्लेषण व्यक्ति को केन्द्र में रखकर ही किया जा सकता है, ये मौलिक आवश्यकताएं किसी समुदाय में व्यक्तिगत विकास के लिए अपरिहार्य होती है, जहाँ समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में पृथक अस्तित्व वाले और विशिष्ट महत्व लिए हुए होते हैं। परंतु, व्यक्तिगत हित के साथ सामूहिक हित भी जुड़ा होता है, ऐसी स्थिति में मानवाधिकारों का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है और मानवाधिकारों की पहचान कर पाना विवादास्पद हो जाता है। इस स्थिति में हम मानव अधिकारों की पहचान वैसे नैतिक अधिकारों के रूप में कर सकते हैं, जो प्रत्येक स्त्री और पुरुष के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक हित के लिए मानव मात्र के रूप में प्राप्त होने चाहिए।

मानवाधिकारों की उत्पत्ति और विकास दो स्तरों पर हुई–राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय। परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय विधि को एक ऐसी विधि मानी जाती थी जो राज्यों के पारस्परिक संबंधों को विनियमित करती थी। अतः यह विधि केवल राज्यों के क्रिया–कलापों से संबंधित थी। व्यक्तियों का अन्तर्राष्ट्रीय विधि की दृष्टि से कोई महत्व नहीं था। इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय विधि के द्वारा अधिकतर अधिकार व कर्तव्य राज्यों के लिए ही बनाये गये थे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय विधि में व्यक्तियों की स्थिति में बहुत ही अधिक परिवर्तन हुआं इस युद्ध के बाद यह निर्विवाद हो गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा व शान्ति उसी समय बनी रह सकती है जब व्यक्तियों की स्थिति में सुधार हो तथा उनके अधिकारों व मूल्य स्वतंत्रताओं की अभिवृद्धि हो। इसी कारण व्यक्तियों को राज्यों द्वारा दिये गये कई अधिकारों में से एक अधिकार को मानव अधिकार कहा जाता है जो आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है।

मानव बुद्धिमान व विवेकपूर्ण प्राणी है और इसी कारण इसको कुछ ऐसे मूल्य तथा अहरणीय अधिकार प्राप्त होते हैं जिसे सामान्यतया मानव अधिकार कहा जाता है। चूंकि ये अधिकार उनसे सम्बन्धित रहते हैं, अतः वे उनके जन्म से ही विहित होते हैं चाहे उनका मूल वंश, धर्म, लिंग तथा राष्ट्रीयता कुछ भी हो। ये अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक है क्योंकि ये उनकी गरिमा एवं स्वतंत्रता के अनुरूप है तथा शारीरिक, नैतिक, सामाजिक और भौतिक कल्याण के लिए सहायक होते हैं। मानव जाति के लिए मानव अध्किार अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के कारण मानव अधिकार को कभी–कभी मूल अधिकार, आधारभूत अधिकार, अर्न्तनिहित अधिकार, प्राकृतिक अधिकार और जन्म अधिकार भी कहा जाता है। मानवीय गरिमा तथा उसके सम्मान को मान्यता देना आज के अन्तर्राष्ट्रीय विधि की एक महानतम उपलब्धि है। यहीं से मानवाधिकार की आधारशिला वास्तव में रखी गई। मैग्नाकार्टा (1215), पेटीशन आफ राइट्स (1928), हैवियस कारपस एक्ट (1679), बिल ऑफ राइट्स (1689) आदि को स्वतंत्रताओं के घोषणापत्र कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

*** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र, महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, हण्डिया, इलाहाबाद**

मानवाधिकार के संदर्भ में हमारे भारतीय ग्रन्थों जैसे मनुस्मृति हितोपदेश, पंचतंत्र की जो कहानियाँ या उपदेश हैं वे सभी मानवाधिकार के ही तो प्रारूप हैं। पाश्चात्य देशों में भी इन अधिकारों का उल्लेख मिलता है। जर्मनी के किसानों द्वारा प्रशासन से मांगे गये अधिकारों को मानवाधिकारों का प्रथम दस्तावेज कहा जा सकता। 19वीं शताब्दी में ब्रिटेन एवं अमेरिका में दास प्रथा की समाप्ति के लिए कई कानून बने और 20वीं शताब्दी के आते–आते मानवाधिकारों को लेकर कई विश्वव्यापी सामाजिक परिवर्तन हुए जिसके अंतर्गत बालश्रम का विरोध हुआ एवं विभिन्न देशों में महिलाओं को चुनाव में मतदान का अधिकार मिला।

10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को स्वीकृत किया। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि चूंकि मानवाधिकारों के प्रति उपेक्षा और घृणा के फलस्वरूप हुए बर्बर कार्यों के कारण मनुष्य की आत्मा पर अत्याचार हुए अतः कानून द्वारा नियम बनाकर मानवाधिकारों की रक्षा करना अनिवार्य है। इसमें कुल 30 अनुच्छेद है। इसके प्रथम अनुच्छेद में ही यह स्पष्ट उल्लेख है कि सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकरों के मामले में जन्मजात स्वतंत्रता और समानता प्राप्त है। दूसरे शब्दों में घोषणा उन तमाम नागरिक, राजनैतिक और धाम्रिक स्वतन्त्रताओं का समावेश करती है, जिसके लिए लोगों ने लम्बे काल से संघर्ष किया है। संयुक्त राष्ट्र प्रभावी के अंतर्गत मानव अधिकार के क्षेत्र में किये गये विकास से यह स्पष्ट होता है कि मानव अधिकारों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है– (1) नागरिक व राजनैतिक अधिकार (2) आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार। नागरिक व राजनैतिक सुरक्षा के अंतर्गत व्यक्ति को प्राण, स्वतन्त्रता और दैहिक सुरक्षा का अधिकार है। इसी क्रम में घोषणा दासता और दास व्यापार को निषिद्ध करती है, आर्थिक, सामान्य और सांस्कृतिक अधिकारों में जैसे सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, शिक्षा, बेरोजगारी अवकाश तथा वेतन सहित आवधिक छुट्टियों का अधिकार, समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार, रूग्णता, असक्तता, वैधव्य, वृद्धावस्था जैसी परिस्थितियों में जीवनयापन के अभाव की दशा में सुरक्षा का अधिकार की भी व्यवस्था की गई है। प्रत्येक व्यक्ति को समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में मूलरूप से भाग लेने का अधिकार है। इन अधिकारों में राज्यों की ओर से सक्रिय हस्तक्षेप की अपेक्षा की जाती है। इन दोनों अधिकारों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के भी अधिकार होते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से प्राप्त करते हैं जैसे–आत्म–निर्णय का अधिकार।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ ने दो पृथक–पृथक प्रसंविदाओं में अधिकार के इन दो प्रकारों को मान्यता दी है, फिर भी इनमें आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह अनुभूति विशेष रूप से विकासशील देशों द्वारा उचित ही की गयी है कि सिविल एवं राजनैतिक अधिकार तब तक अर्थहीन है जब तक कि उनके साथ सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकार सम्बद्ध न कर दी जाये। अधिकारों की दोनों कोटियों के बीच संबंध की मान्यता 1968 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार सम्मेलन में दी गयी थी जिसके अंतिम घोषणा में यह कहा गया था कि –

''चूकि मानव अधिकार एवं मूलभूत स्वतंत्रतायें अविभाज्य हैं, इसलिए आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के उपभोग के बिना सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों की पूर्ण प्राप्ति असंगत है।'' 1993 के वियना सम्मेलन में पुनः इस बात पर जोर दिया गया था कि अधिकारों के इन दोनों समूहों में कोई भेद नहीं है– ''सभी मानव अधिकार सार्वभौमिक, अविभाज्य, अन्योन्याश्रित एवं अंर्तसंबंधित है। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को मानव अधिकारों को वैश्विक रूप से समान आधार एवं समान बल पर समान तरीके से समझना चाहिए।

महिला अधिकार–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसे समाज द्वारा बनाए गए नियमों का पालन अनिवार्य रूप से करना होता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो इससे सामाजिक मूल्यों का ह्रास तो होता ही है, साथ ही बहुत सी सामाजिक समस्याओं को पनपने का भी मौका मिलता है। धार्मिक कट्टरता, जाति–प्रथा, अन्धविश्वास, नारी शोषण, दहेज प्रथा, सामाजिक शोषण, बेरोजगारी, अशिक्षा, जनसंख्या वृद्धि, भ्रष्टाचार, गरीबी इत्यादि हमारी प्रमुख सामाजिक समस्याएँ हैं। ऐसा नहीं है कि ये सभी सामाजिक समस्याएँ हमेशा से हमारे समाज में विद्यमान रही हैं। कुछ समस्याओं की जड़ में धार्मिक

कुरीतियाँ हैं तो कुछ ऐसी भी समस्याएँ हैं जिन्होंने सदियों की गुलामी के बाद समाज में अपनी जड़ें स्थापित कर ली, जबकि कुछ समस्याओं के मूल में दूसरी पुरानी समस्याएँ भी हैं।

महिलाओं की स्थिति प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समाज में भी बड़ी विवादास्पद रही है। स्त्री के ऊपर की जाने वाली घरेलू एवं वाह्य दोनों तरह की जड़े पित्रस्तात्मकता के पुरूष वर्चस्व वाली सामाजिक संरचना में निहित है। महिलाओं के विरूद्ध अहिंसा एवं अत्याचार दिन–प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे। किसी सभ्यता की आत्मा को समझने तथा उसकी उपलब्धियों एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने का सर्वोत्तम आधार उसमें स्त्रियों की दशा का अध्ययन करना है। स्त्रियों की दशा किस देश की संस्कृति का मापदण्ड मानी जाती है। समुदाय का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक आधार रखता है।

हमारा भारत देश एक महान परम्पराओं वाला देश है। प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। भारत की प्राचीनतम सैन्धव सभ्यता के धर्म में मातृदेवी का, तो ऋग्वैदिक काल में उसे आदरपूर्ण स्थान दिया गया तथा धर्मिक और समाजिक अधिकार पुरूषों के ही समान थे। स्मृतिकाल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट शुरू हुई जो फिर कभी बन्द नहीं हुई। वैदिक काल में कन्या को पुत्र जैसा ही शैक्षणिक अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त थी। ऋग्वेद में ऐसे अनेक स्त्रियों के नाम मिलते हैं जो विदुषी एवं दार्शनिक थी। घोषा, लोपामुद्रा, विश्वारा, अपाला, इंद्राणी आदि विदुषी स्त्रियों के नाम मिलते हैं जो वैदिक मंत्रों एवं स्त्रोतों की रचयिता है। उपनिषद काल में भी हम मैत्रेयी, गार्गी, अत्रेयी आदि के नाम दार्शनिक श्रेणी में रख सकते हैं। वृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार गार्गी ने उस समय के प्रख्यात दार्शनिक याज्ञवल्क्य से राजा जनक की सभा में गूढ़ दार्शनिक प्रश्नों पर वाद–विवाद किया था जिससे यह पता चलता है कि उस समय स्त्रियों की दशा पुरूषों के समान थी। भारतीय संस्कृति में तो नारी को वास्तव में पूजा–भाव और सम्पूर्ण सम्मान प्रदान किया गया। सम्मान और पूजा भाव के कारण ही यहाँ हर परम पुरूष के साथ एक नारी को भी देवी और माता के रूप में कल्पना की गयी है जैसे– राम से पहले सीता, कृष्ण के साथ राधा, शंकर के साथ पार्वती आदि। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नारी हर प्रकार से आदर्श का प्रतीक रही है।

नारी भारतीय समाज का एक ऐसा घटक है जिसकी स्थिति एवं क्रियाकलाप समय के साथ परिवर्तित होते रहे हैं। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में पहुंचकर भारतीय नारी का मान–सम्मान घटने लगता है। अनेक प्रकार के राजनीतिक–सामाजिक पतन और धार्मिक कारणों के कारण मध्यकाल में नारी को अपने घरों में कैद होकर रह जाना पड़ा। उसे सिर्फ भोग की वस्तु और पुरूष की चल सम्पत्ति माना जाने लगा। उसके लिए शिक्षा पाने का तक पर पाबन्दी लगा दी गयी। राजपूत काल तथा यवनों के आगमन के बाद राजस्थान में नवजात कन्या शिशुओं की हत्या की जाने लगी। वही दूसरी ओर भक्तिकालीन कवियों ने नारी को पतन का कारण मानते हुए नारी से दूर रहने की शिक्षा प्रचारित की। रीतिकालीन कवियों ने नारियों का भोग विलास मय चित्रण किया है।

आधुनिक काल में आकर नारी शिक्षा के साथ–साथ उसके जागरण और स्वतंत्रता का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश काल में ही स्थिति को सुधारने हेतु बहुमुखी प्रयत्न किये गये जिसके कारण आधुनिक समय में तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय स्त्रियों की स्थिति पहले से पर्याप्त ठीक है। ऐसा तो नहीं है कि स्त्रियों से संबंधित सभी सामाजिक कुरीतियाँ समाप्त हो गई हों लेकिन भारतीय समाज ने स्त्री और पुरूष की समता को स्वीकार कर लिया है। स्त्रियों की स्थिति में सुधार 19वीं शताब्दी में हुए सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन के परिणाम स्वरूप है। राजाराममनोहन राय ने सती प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह, पर्दा प्रथा आदि कुरीतियों का विरोध किया, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह तो वहीं दयानन्द सरस्वती ने स्त्री शिक्षा और स्त्री उद्धार को बढ़ावा दिया। महात्मा गांधी ने स्त्रियों की उन्नति के लिए राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार आधुनिक काल में नारी का सम्मान पुनः लौटने लगा। भारतीय साहित्यकारों ने उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा और सम्मानित किया। जयशंकर प्रसाद ने अपने कामायनी में लिखा है– ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नभतल में।'' अब नारी को भारतीय कानून में पुरूषों के समान अधिकार दिया जा रहा है जिससे उनके सम्मान में अधिक वृद्धि हो सके। इसका प्रारम्भ विलियम बेटिंग ने 1829 ई0 में सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित

किया, 1856 ई0 में विधवा विवाह कानून द्वारा पुर्नविवाह के अधिकार, 1937 ई0 में स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार और 1943 में कार्यरत स्त्रियों को बच्चे के जन्म के अवसर पर अवकाश देने की व्यवस्था की गई। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में यह स्पष्ट उल्लेख है कि ''राज्य स्त्री पुरूष में किसी प्रकार के अन्तर को नहीं स्वीकार करेगा। महिलाओं की प्रास्थिति पर आयोग की स्थापना 1946 में की गयी थी। आयोग की सदस्यता प्रारम्भ में 15 थी जिसको 1961 में बढ़ाकर 21 कर दी गयी। आयोग वर्ष में दो बार वियना में सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं की समानता के प्रति उन्नति का परीक्षण करने के लिए बैठक करता है। यह महिलाओं के अधिकार के क्षेत्र में ध्यान देने की समस्याओं के विषय में सिफारिश करता है। यह आयोग ने यह उद्घोषणा की थी कि ''सभी मानव गरिमा एवं अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र व समान पैदा हुए हैं और हर व्यक्ति उसमें उपवर्णित सभी अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का, लिंग पर आधारित भेदभाव सहित किसी भी प्रकार के बिना किसी भेदभाव के हकदार हैं। फिर भी महिलाओं के विरूद्ध व्यापक भेदभाव विद्यमान है इसीलिए महासभा ने 7 नवम्बर 1967 में महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव की समाप्ति की घोषणा को अंगीकार किया और घोषणा में प्रस्तावित सिद्धान्तों के कार्यान्वयन के लिए महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय 18 दिसम्बर 1979 को महासभा द्वारा स्वीकार किया गया अभिसमय 1981 को प्रवृत्त हुआ और 1 अक्टूबर 2004 तक इसके 178 राज्य पक्षधर बन चुके हैं।

महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव की व्याख्या–

महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के समापन संबंधी अभिसमय, संयुक्तराष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 18 दिसम्बर 1979 को अंगीकार किया गया था। यह अभिसमय 3 सितम्बर 1981 से प्रभावी हुआं यह अभिसमय छः भागों और 30 अनुच्छेदों में बंटा हुआ है। अनुच्छेद 1 ''महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव को परिभाषित करता है। भाग 3 के अंतर्गत अभिसमय ने कई क्षेत्रों का प्रतिपादन किया जहाँ राज्य पक्षकारों के लिए महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव को दूर करने के लिए कहा गया है जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं :–

(1) शिक्षा –

इसके अन्तर्गत अभिसमय यह निश्चित करता है कि अपने कैरियर और शैक्षिक पथ–प्रदर्शन में महिलाओं के लिए वे ही शर्तें मान्य होंगी जैसा कि पुरूषों को प्राप्त है। महिलाओं का पाठ्यक्रम, छात्रवृति और अन्य अध्ययन अनुदान से सम्बन्धित मामलों में, खेल तथा व्यायाम शिक्षा और अनवरत शिक्षा कार्यक्रम में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए उन्हें समान अवसर प्राप्त होंगे।

(2) नियोजन या रोजगार –

रोजगार के क्षेत्र में महिलाओं के अधिकार पुरूषों के समान होंगे– (1) विशेष रूप से काम करने का अधिकार (2) समान नियोजन के अवसर के अधिकार (3) व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता (4) समान पारिश्रमिक पाने का अधिकार (5) सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, (6) कार्यकारी दशाओं में स्वास्थ्य, सुरक्षा, विवाद, प्रसव ऐसी दशाओं में विशेष अधिकार की व्यवस्था में महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव नहीं किया जायेगा।

(3) स्वास्थ्य सुरक्षा –

अनुच्छेद 12 यह तय करता है कि स्वास्थ्य सुरक्षा सेवाओं की प्राप्ति में राज्य महिलाओं के प्रति सम्मानित व्यवहार करते हुए उनके अधिकारों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करे।

(4) आर्थिक तथा सामाजिक जीवन स्तर –

आर्थिक व सामाजिक स्तर पर भी महिलाओं को भी वे सभी अधिकार प्राप्त किये जायें जैसे– पारिवारिक लाभ, बैंक ऋण, वित्तीय जमा, मनोरंजन, खेल तथा सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्र में।

(5) ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकार –

सभी स्तरों पर विकास योजना, और उसके अनुपालन में भागीदारी, पर्याप्त स्वास्थ्य सुरक्षा, औपचारिक और अनौपचारिक प्रशिक्षण, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, कृषिक जमा और ऋणों में पहुँच प्राप्त करना, पर्याप्त आजीविका दशाओं का उपभोग, सभी सामुदायिक कार्यों में भाग लेने का अधिकार।

(6) विधि के समक्ष समानता का अधिकार –

राज्य पक्षकार विधि के समक्ष पुरूषों के साथ महिलाओं को भी संविदायें पूर्ण करने में और सम्पत्ति का प्रशासन करने में समान अधिकार रखेगी तथा न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों में तथा प्रक्रिया की समान अवस्थाओं में उनसे समान और सम्मानित व्यवहार करेगी।

(7) विवाह तथा पारिवारिक संबंध –

विवाह करने, विवाह विघटन में समान अधिकार तथा दायित्व, माता–पिता के रूप में बच्चों से सम्बन्धित अधिकार, अपने बच्चों की संख्या और बीच की अवधि निश्चित करने में स्त्री–पुरूष का स्वतन्त्र तथा समान दायित्व होगा, पति–पत्नि के रूप में समान व्यक्तिगत अधिकार जिसमें नाम चुनने, व्यवसाय, आजीविका चुनने का समान अधिकार सम्मिलित है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राज्य पक्षकार निश्चित समय पर समिति को विधायी न्यायिक, प्रशासनिक अथवा अन्य ऐसे रिपोर्ट देंगें जिन्हें उन्होंने अभिसमय के समय के प्रावधानों को प्रभावी बनाने हेतु अंगीकार किया है। उपर्युक्त अभिसमयों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक (1975–1985) के दौरान तीन सम्मेलन हुए। पहला 1975 में मेक्सिको सिटी, दूसरा 1980 में कोपेन हेगन, तीसरा 1985 में नैरोबी तथा अंतिम और चौथा सम्मेलन 1995 विश्व महिला सम्मेलन बिजिंग में हुआ जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के बीच अमूल्य कड़ी का आधार बना।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की स्थिति –

महिलाओं की स्थिति के बारे में राष्ट्रीय समिति ने बताया कि धर्म, प्रथाएं और विवाह की आयु कुछ ऐसे प्रमुख कारक हैं जिनके कारण महिलाओं का दर्जा कम हो जाता है। समिति की रिपोर्ट के अनुसार धार्मिक परिवेश के कारण भी उसकी स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। महिलाओं के प्रति समाज का क्रूर–व्यवहार और भी कई कारणों से होता हे। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत महिलाओं को समान अधिकार दिया है जो यह उपबन्ध करता है कि राज्य भारत के क्षेत्र के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता अथवा विधियों के समान संरक्षण से इन्कार नहीं करेगा और न ही उनके विरूद्ध कोई भेदभाव अधिकार की समानता तथा मानव गरिमा के लिए सम्मान का उल्लंघन होगा। भारत में महिलाएं समानता के अधिकार का उपभोग करती है किन्तु उनकी प्रस्थिति में और भी सुधार करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 15(3) में यह उपबन्ध किया गया है कि राज्य महिलाओं के लिए विशेष उपबन्ध कर सकता है। उदाहरणार्थ पंचायतों तथा नगरपालिकाओं में उनके पक्ष में 33 प्रतिशत सीटों का आरक्षण कर दिया गया। भारतीय न्यायालयों ने संविधानिक उपबन्धों के आधार पर कुछ नियमों तथा विनियमों को महिलओं के विरूद्ध भेदभावकारी माना है और फलस्वरूप असंवैधानिक माना है। उदाहरण के लिए सी0वी0 मुथम्मा बनाम भारत संघ, एयर इंडिया बनाम वर्गेस मीरजा, माया देवी बनाम महाराष्ट्र सरकार, प्रतिभारानी बनाम सूरज कुमार, हरिहरन बनाम रिजर्व बैंक आफ इंडिया आदि कई प्रावधानों में उच्च न्यायालय में महिलाओं के अधिकारों के सम्मान की रक्षा करते हुए अपने निर्णयों को सकारात्मकता प्रदान की।

कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं और एन0जी0ओ0 लोगों द्वारा विशाका तथा अन्य बनाम राजस्थान राज्य में इस उद्देश्य से रिट याचिका प्रस्तुत की गयी थी कि वर्तमान विधान में रिक्तता की पूर्ति न्यायिक प्रक्रिया द्वारा पूरी की जाय कि सभी कार्य स्थानों पर कार्य कर रही महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न को रोका जाय। भारत में 9 जुलाई 1993 को महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय 1979 का अनुसमर्थन किया। अभिसमय के अनुसमर्थन ने भारत के अभिसमय द्वारा आरोपित कर्तव्य का सम्मान करने के लिए कहा है। मधु किश्वार बनाम बिहार राज्य में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय मूल्य अधिकारों और निदेशक सिद्धान्तों की अविभाज्य योजना है। इसके अतिरिक्त महिलाओं के अधिकार से सम्बन्धित कुछ प्रमुख अधिनियम जैसे–दहेज प्रतिषेध नियम 1961, अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम 1956, स्त्रियों का अशिष्ट प्रस्तुतीकरण (प्रतिषेध अधिनियम 1986, महिलाओं के घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम 2006, सती निवारण अधिनियम 1987, बाल विवाह विरोध अधिनियम 1929, बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम 2006, गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1971, राष्ट्रीय महिला आयोग

अधिनियम 1990, महिलाओं के अधिकार से संबंधित प्रावधान–इसके अंतर्गत झूठा आरोप लगाने वाली महिला या शिकायतकर्ता के विरूद्ध भी कार्यवाही हो सकती है। इसकी परिधि में निजी और सार्वजनिक (दोनों) संगठित और गैर–संगठित कार्यक्षेत्र भी आयेगे किन्तु घरेलू सहायक या मददगार नहीं आयेंगे। आशा की जाती है कि संसद के इसी सत्र में बिल, विधेयक बन जायेगी।

यद्यपि देश में महिलाओं की स्थिति को देखते हुए इस तरह की किसी कारवाई की आवश्यकता और औचित्य स्थापित करने के लिए काई तर्क देने की आवश्यकता नहीं है। नारी को देवी तो हमारे समाज ने कहा है पर आज भी कुल मिलाकर इस देश की नारी दूसरे दर्जे के नागरिक का जीवन जी रही है। यह सही है कि नारी की स्थिति में निरन्तर बदलाव आ रहा है परन्तु सामाजिक स्तर पर इसकी गति कम है। इस विसंगति को एक विडम्बना के रूप में ही देखा जा सकता है कि जिस देश में एक नारी लगभग डेढ़ दशक तक प्रधानमंत्री रही है उस देश में महिला आबादी का एक बड़ा हिस्सा आज भी बीमार परम्पराओं और रूढ़ियों के बंधनों में जकड़ा हुआ है। नारी अपनी अस्मिता एवं सम्मान के प्रति इतनी संवेदनशील होती है कि कदम–कदम पर उसे तत्कालीन परिस्थितियों से समझौता करना पड़ता है। पुरूष प्रधान समाज एवं वातावरण महिलाओं की इस बेवसी का लाभ उठाने लगता है, जिसकी परिणति यौन उत्पीड़न के रूप में सामने आती है। ऐसे समाज की स्थापना हो जहाँ महिलाओं का शोषण न हो तथा नारी के पावों में पड़ी पायल रूपी जंजीर हमेशा के लिए टूट जाये और उसका आंचल उसकी गुलामी का नहीं अपितु आजादी का परचम बनकर लहराये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ0 तपेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी– मानवाधिकार–चतुर्थ संस्करण 2011 इलाहाबाद लॉ एजेन्सी, पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
2. डॉ0 एस0ओ0 अग्रवाल–मानव अधिकारी–तृतीय संस्करण 2005 इलाहाबाद लॉ एजेन्सी, पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
3. डॉ0 श्याम किशोर कपूर – मानव अधिकार – पंचम संस्करण 2011 इलाहाबाद लॉ एजेन्सी, पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
4. डॉ0 मधु पाण्डेय – महिलाएँ एवं अपराध विधि सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
5. डॉ0 बसन्ती लाल बावेल – महिला एवं बाल कानून, पंचम संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
6. संयुक्त राष्ट्र का चार्टर – सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2016 इलाहाबाद ला एजेन्सी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
7. राजेन्द्र प्रसाद – नारी आधी आबादी की पूरी बात प्रथम संस्करण, राजधानी पथ, पब्लिकेशन्स चन्दौली, उ0प्र0, 2015

◆